विश्व-धर्म के रूप में जैनधर्म दर्शन की प्रासंगिकता

—डॉ. महावीर सरन जैन

एम. ए., डी. फिल्., डी. लिट्.

आज के विश्व को एक ऐसे धर्म दर्शन की आवश्यकता है जो उसकी वर्तमान समस्याओं का समाधान कर सके।

आज भौतिक विज्ञानों ने बहुत विकास किया है। उनकी उपलब्धियों एवं अनुसन्धानों ने मनुष्य को चमत्कृत कर दिया है। ज्ञान का विकास इतनी तीव्र गति से हो रहा है कि प्रबुद्ध पाठक भी सम्पूर्ण ज्ञान से परिचय प्राप्त करने में असमर्थ एवं विवश है। ज्ञान की शाखा-प्रशाखा में विशेषज्ञता का दायरा बढ़ता जा रहा है। एक विषय का विद्वान् दूसरे विषय की तथ्यात्मकता एवं अध्ययन-पद्धति से अपने को अनभिज्ञ पा रहा है। हर जगह, हर दिशा में नई खोज, नया अन्वेषण हो रहा है। प्रतिक्षण अनुसन्धान हो रहे हैं। जो आज तक नहीं खोजा जा सका, उसकी खोज में व्यक्ति संलग्न है, जो आज तक नहीं सोचा गया उसे सोचने में व्यक्ति व्यस्त है। जिन घटनाओं को न समझ पाने के कारण उन्हें 'परात्पर परब्रह्म' के धरातल पर अगम्य-रहस्य मानकर, उन पर चिन्तन करना बन्द कर दिया गया था वे आज अनुसंधेय हो गई हैं। सृष्टि की बहुत सी गुत्थियों की व्याख्या हमारे दार्शनिकों ने परमात्मा एवं माया के आधार पर की थी। उन व्याख्याओं कारण वे 'परलोक' की बातें हो गई थीं। आज उनके बारे में भी व्यक्ति जानना चाहता है। अन्वेषण की जिज्ञासा बढ़ती जा रही है। आविष्कार का धरातल अब भौतिक पदार्थों तक ही सीमित होकर नहीं रह गया है। अन्तर्मुखी चेतना का अध्ययन एवं पहचान भी उसकी सीमा में आ रही है। पहले के व्यक्ति ने इस संसार में कष्ट अधिक भोगे थे। भौतिक उपकरणों का अभाव था। उसने स्वर्ग की कल्पना की थी। भौतिक इच्छाओं की सहज तृप्ति की कल्पना ही उस लोक की परिकल्पना का आधार थी। आज का युग दिव्यताओं को धरती के अधिक निकट लाने के प्रयास में रत है। पृथ्वी को ही स्वर्ग बना देने के लिए बेताब है।

इतना होने पर भी मनुष्य सुखी नहीं है। यह अशान्ति क्यों ? वह सुख की तलाश में भटक रहा है। धन बटोर रहा है, भौतिक उपकरण जोड़ रहा है। वह अपना मकान बनाता है। आलीशान इमारत बनाने के स्वप्न को मूर्तिमान करता है। फिर मकान को सजाता है। सोफासेट, कालीन, वातानुकूलित व्यवस्था, मँहगे पर्दे, प्रकाश-ध्वनि के आधुनिकतम उपकरण एवं उनके द्वारा रचित मोहक प्रभाव। सब कुछ अच्छा लगता है। मगर परिवार के सदस्यों के बीच जो प्यार, विश्वास पनपना चाहिए उसकी कमी होती जा रही है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पहले पति-पत्नी भावना की डोरी से आजीवन बँधने के लिए प्रतिबद्ध रहते थे। दोनों को विश्वास रहता था कि वे इसी घर में आजीवन साथ-साथ रहेंगे। दोनों का सुख-दुख एक होता था। उनकी इच्छाओं की धुरी 'स्व' न होकर 'परिवार' थी। वे अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं को पूरा करने के बदले, अपने बच्चों एवं परिवार के अन्य सदस्यों की इच्छाओं की पूर्ति में सहायक बनना अधिक अच्छा समझते थे। आज की चेतना क्षणिक, संशयपूर्ण एवं तात्कालिकता में केन्द्रित होकर रह गई है। इस कारण व्यक्ति अपने में ही सिमटता जा रहा है। सम्पूर्ण भौतिक सुखों को अकेला भोगने की दिशा में व्यग्र मनुष्य अन्ततः अतृप्ति का अनुभव कर रहा है।

भौतिक विज्ञानों के चमत्कारों से भयाकुल चेतना को हमें आस्था प्रदान करनी है। निराश एवं संत्रस्त मनुष्य को आशा एवं विश्वास की मशाल थमानी है। परम्परागत मूल्यों को तोड़ दिया गया है। उन पर दुबारा विश्वास नहीं किया जा सकता क्योंकि वे अविश्वसनीय एवं अप्रासंगिक हो गये हैं। परम्परागत मूल्यों की विकृतियों को नष्ट कर देना ही इच्छा है। हमें नये युग को नये जीवन मूल्य प्रदान करने हैं। इस युग में बौद्धिक संकट एवं उलझनें पैदा हुई हैं। हमें समाधान का रास्ता ढूँढ़ना है।

आज विज्ञान ने हमें गति दी है, शक्ति दी है। लक्ष्य हमें धर्म एवं दर्शन से प्राप्त करने हैं। लक्ष्य-विहीन होकर दौड़ने से जिन्दगी की मंजिल नहीं मिलती।

वैज्ञानिक उपलब्धियों के कारण जिस शक्ति का हमने संग्रह किया है उसका उपयोग किस प्रकार हो, गति का नियोजन किस प्रकार हो—यह आज के युग की जटिल समस्या है। इसके समाधान के लिए हमें धर्म एवं दर्शन की ओर देखना होगा।

इसका कारण यह है कि धर्म ही ऐसा तत्व है जो मानव हृदय की असीम कामनाओं को सीमित करने की क्षमता रखता है, उसकी दृष्टि को व्यापक बनाता है, मन में उदारता, सहिष्णुता एवं प्रेम की भावना का विकास करता है।

कोई भी समाज धर्महीन होकर स्थिर/स्थित नहीं रह सकता। समाज की व्यवस्था, शान्ति तथा समाज के सदस्यों में परस्पर प्रेम एवं विश्वास का भाव जगाने के लिए धर्म का पालन आवश्यक है।

धर्म कोई सम्प्रदाय नहीं है। धर्म का अर्थ है—'धञ् धारणे'=धारण करना। जिन्दगी में जो हमें धारण करना चाहिए—वही धर्म है। हमें जिन नैतिक मूल्यों को जिन्दगी में उतारना चाहिए वही धर्म है।

मन की कामनाओं को नियन्त्रित किये बिना समाज रचना सम्भव नहीं है। जिन्दगी में संयम की लगाम आवश्यक है।

कामनाओं के नियन्त्रण की शक्ति या तो धर्म में है या शासन की कठोर व्यवस्था में। धर्म का अनुशासन 'आत्मानुशासन' होता है। व्यक्ति अपने पर स्वयं शासन करता है। शासन का अनुशासन हमारे ऊपर 'पर' का नियन्त्रण होता है। दूसरों के द्वारा अनुशासित होने में हम विवशता का अनुभव करते हैं, परतन्त्रता का बोध करते हैं, घुटन की प्रतीति करते हैं।

मार्क्स ने धर्म की अवहेलना की है। वास्तव में मार्क्स ने मध्ययुगीन धर्म के बाह्य आडम्बरों का विरोध किया है। जिस समय मार्क्स ने धर्म के बारे में चिन्तन किया उस समय उसके चारों ओर धर्म का पाखण्ड भरा रूप था। मार्क्स ने इसी को धर्म का पर्याय मान लिया।

वास्तव में धर्म तो वह पवित्र अनुष्ठान है जिससे चेतना का शुद्धिकरण होता है। धर्म वह तत्त्व है जिससे व्यक्ति अपने जीवन को चरितार्थ कर पाता है। धर्म दिखावा नहीं, प्रदर्शन नहीं,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रूढ़ियाँ नहीं, किसी के प्रति घृणा नहीं, मनुष्य मनुष्य के बीच भेदभाव नहीं अपितु मनुष्य में मनुष्यता के गुणों के विकास की शक्ति है; सार्वभौम चेतना का सत्-संकल्प है।

आज के विश्व के लिए किस प्रकार का धर्म एवं दर्शन सार्थक हो सकता है ?

मध्य युग में विकसित धर्म एवं दर्शन के परम्परागत स्वरूप एवं धारणाओं में आज के व्यक्ति की आस्था समाप्त हो चुकी है। इसके कारण हैं।

मध्ययुगीन चेतना के केन्द्र में 'ईश्वर' प्रतिष्ठित था। हमारा सारा धर्म एवं दर्शन इसी 'ईश्वर' के चारों ओर घूमता था। सम्पूर्ण सृष्टि के कर्ता, पालनकर्ता, संहारकर्ता के रूप में हमने 'परम शक्ति' की कल्पना की थी। उसी शक्ति के अवतार के रूप में, या उसके पुत्र के रूप में या उसके प्रतिनिधि के रूप में हमने ईश्वर, ईसा या अल्लाह को माना तथा उन्हीं की भक्ति में अपनी मुक्ति का मन्त्र मान लिया। स्वर्ग की कल्पना, देवताओं की कल्पना, वर्तमान जीवन की निरर्थकता का बोध, अपने देश एवं अपने काल की माया एवं प्रपंचों से परिपूर्ण अवधारणा आदि बातें हमारे मध्ययुगीन धर्म दर्शन के घटक थे। वर्तमान जीवन की मुसीबतों का कारण हमने अपने विगत जीवन के कर्मों को मान लिया। वर्तमान जीवन में अपने श्रेष्ठ आचरण द्वारा अपनी मुसीबतों को कम करने की तरफ हमारा ध्यान कम गया, अपने आराध्य की स्तुति एवं जयगान की ओर अधिक।

ईश्वर और मनुष्य के बीच के बिचौलियों ने मनुष्य को सारी मुसीबतों, कष्टों, विपदाओं से मुक्त होकर स्वर्ग, बहिश्त में मौज की जिन्दगी बिताने की राह दिखायी और बताया कि हमारे माध्यम से अपने आराध्यों के प्रति तन, मन, धन से समर्पित हो जाओ—पूर्ण आस्था, पूर्ण विश्वास, पूर्ण निष्ठा के साथ भक्ति करो। तर्क को साधना पथ का सबसे बड़ा शत्रु मान लिया गया।

धर्म की उपर्युक्त धारणायें आज टूट चुकी हैं। विज्ञान ने हमें दुनियाँ को समझने और जानने का तर्कवादी रास्ता बताया है। विज्ञान ने यह स्पष्ट किया कि यह विश्व किसी की इच्छा का परिणाम नहीं है। विश्व तथा सभी पदार्थ कारण-कार्य भाव से बद्ध हैं। भौतिक विज्ञान ने सिद्ध किया है कि जगत में किसी पदार्थ का नाश नहीं होता केवल रूपान्तर मात्र होता है। इस धारणा के कारण इस जगत को पैदा करने वाली शक्ति का प्रश्न नहीं उठता। जीव को उत्पन्न करने वाली शक्ति का प्रश्न नहीं उठता। विज्ञान ने शक्ति के संरक्षण के सिद्धान्त में विश्वास जगाया है। पदार्थ की अनश्वरता के सिद्धान्त की पुष्टि की है। समकालीन पाश्चात्य अस्तित्ववादी दर्शन ने भी ईश्वर का निषेध किया है। उसने यह माना है कि मनुष्य का सृष्टा ईश्वर नहीं है। मनुष्य वह है जो अपने आपको बनाता है।

इस प्रकार जहाँ मध्ययुगीन चेतना के केन्द्र में 'ईश्वर' प्रतिष्ठित था वहाँ आज की चेतना के केन्द्र में 'मनुष्य' प्रतिष्ठित है। मनुष्य ही सारे मूल्यों का स्रोत है। वही सारे मूल्यों का उपादान है। आज के मनुष्य के लिए ऐसा धर्म एवं दर्शन व्याख्यायित करना होगा जो 'ईश्वरवादी' नहीं होगा, भाग्यवादी नहीं होगा। उसके विधानात्मक घटक होंगे—(१) मनुष्य, (२) कर्मवाद की प्रेरणा, (३) सामाजिक समता।

आज के अस्तित्ववादी दर्शन में, विज्ञान के द्वारा प्रतिपादित अवधारणाओं में तथा साम्यवादी शासन-व्यवस्था में कुछ विचार प्रत्यय समान हैं।

(१) तीनों ईश्वरवादी नहीं हैं। ईश्वर के स्थान पर मनुष्य स्थापित है।

(२) तीनों भाग्यवादी नहीं हैं। कर्मवादी तथा पुरुषार्थवादी हैं।

(३) तीनों में मनुष्य की जिन्दगी को सुखी बनाने का संकल्प है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अस्तित्ववादी दर्शन में व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य पर जोर है तो साम्यवादी दर्शन में सामाजिक समानता पर। इन समान एवं विषम विचार-प्रत्ययों के आधार पर क्या नये युग का धर्म एवं दर्शन निर्मित किया जा सकता है ?

हम देखते हैं कि विज्ञान ने शक्ति दी है। अस्तित्ववादी दर्शन ने स्वातन्त्र्य चेतना प्रदान की है। साम्यवाद ने विषमताओं को कम कराने पर बल दिया है। फिर भी, विश्व में संघर्ष की भावना है; अशांति है, शस्त्रों की स्पर्धा एवं होड़ है; जिन्दगी में हैवानियत है। फिर यह सब क्यों है ?

इसका मूल कारण है कि इन तीनों ने 'संघर्ष' को मूल मान लिया है। मार्क्सवाद वर्ग-संघर्ष पर आधारित है। विज्ञान में जगत, मनुष्य एवं यंत्र का संघर्ष है। अस्तित्ववाद व्यक्ति एवं व्यक्ति के अस्तित्व-वृत्तों के मध्य संघर्ष, भय, घृणा आदि भावों की उद्भावना एवं प्रेरणा मानता है।

आज हमें मनुष्य को चेतना के केन्द्र में प्रतिष्ठित कर उसके पुरुषार्थ और विवेक को जागृत कर उसके मन में सृष्टि के समस्त जीवों एवं पदार्थों के प्रति अपनत्व का भाव जगाना है; मनुष्य एवं मनुष्य के बीच आत्म-तुल्यता की ज्योति जगानी है जिससे परस्पर समझदारी, प्रेम, विश्वास पैदा हो सके। मनुष्य को मनुष्य के खतरे से बचाने के लिए हमें आधुनिक-चेतना-सम्पन्न व्यक्ति को आस्था एवं विश्वास का सन्देश प्रदान करना है।

प्रश्न उठता है कि हमारे दर्शन एवं धर्म का स्वरूप क्या हो ?

हमारा दर्शन ऐसा होना चाहिए जो मानव मात्र को सन्तुष्ट कर सके, मनुष्य के विवेक एवं पुरुषार्थ को जागृत कर उसको शान्ति एवं सौहार्द का अमोघ मंत्र दे सकने में सक्षम हो। इसके लिए हमें मानवीय मूल्यों की स्थापना करनी होगी; सामाजिक बंधुत्व का वातावरण निर्मित करना होगा; दूसरों को समझने और पूर्वाग्रहों से रहित मनःस्थिति में अपने को समझाने के लिये तत्पर होना होगा; भाग्यवाद के स्थान पर कर्मवाद की प्रतिष्ठा करनी होगी; उन्मुक्त दृष्टि से जीवनोपयोगी दर्शन का निर्माण करना होगा। धर्म एवं दर्शन का स्वरूप ऐसा होना चाहिए जो प्राणीमात्र को प्रभावित कर सके एवं उसे अपने ही प्रयत्नों के बल पर विकास करने का मार्ग दिखा सके। ऐसा दर्शन नहीं होना चाहिए जो आदमी आदमी के बीच दीवारें खड़ी करके चले। धर्म और दर्शन को आधुनिक लोकतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था के आधारभूत जीवन मूल्यों—स्वतंत्रता, समानता, विश्व बन्धुत्व तथा आधुनिक वैज्ञानिक निष्कर्षों का अविरोधी होना चाहिए।

जैन : आत्मानुसन्धान का दर्शन—'जैन' साम्प्रदायिक दृष्टि नहीं है। यह सम्प्रदायों से अतीत होने की प्रक्रिया है। सम्प्रदाय में बन्धन होता हैं। यह बन्धनों से मुक्त होने का मार्ग है। 'जैन' शाश्वत जीवन-पद्धति तथा जड़ एवं चेतन के रहस्यों को जानकर 'आत्मानुसंधान' की प्रक्रिया है।

जैनदर्शन : प्रत्येक आत्मा की स्वतन्त्रता की उद्घोषणा—भगवान् महावीर ने कहा—'पुरिसा ! तुममेव तुमं मित्तं'।

पुरुष तू अपना मित्र स्वयं है। जैन दर्शन में आत्मा के स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है—'अप्पा कत्ता विकत्ता य दुहाण य सुहाण य' आत्मा ही दुख एवं सुख का कर्ता या विकर्ता है। यानी कोई बाहरी शक्ति आपको नियंत्रित, संचालित, प्रेरित नहीं करती। आप स्वयं ही अपने जीवन के ज्ञान से, चरित्र से उच्चतम विकास कर सकते हैं। यह एक अत्यधिक क्रान्तिकारी विचार है। इसको यदि हम आधुनिक जीवन-सन्दर्भों के अनुरूप व्याख्यायित कर सकें तो निश्चित रूप से विश्व के ऐसे समस्त प्राणी जो धर्म और दर्शन से निरन्तर दूर होते जा रहे हैं, इससे जुड़ सकते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवान् महावीर का दूसरा क्रान्तिकारी एवं वैज्ञानिक विचार यह है कि मनुष्य जन्म से नहीं अपितु आचरण से महान बनता है। इस सिद्धान्त के आधार पर उन्होंने मनुष्य समाज की समस्त दीवारों को तोड़ फेंका। आज भी मनुष्य और मनुष्य के बीच खड़ी की गई जितने प्रकार की दीवारें हैं उन सारी दीवारों को तोड़ देने की आवश्यकता है। यदि हम यह मान लेते हैं कि 'मनुष्य जन्म से नहीं, आचरण से महान बनता है' तो जो जातिगत विष है, समाज की शान्ति में एक प्रकार का जो विष घुला हुआ है, उसको हम दूर कर सकते हैं। जो पढ़ा हुआ वर्ग है उसे निश्चित रूप से इसको सैद्धान्तिक रूप से ही नहीं अपितु इसे अपने जीवन में आचरण की दृष्टि से भी उतारना चाहिए।

प्रत्येक व्यक्ति परमात्मा बन सकता है—प्रत्येक व्यक्ति साधना के आधार पर इतना विकास कर सकता है कि देवता लोग भी उसको नमस्कार करते हैं। 'देवा वि त्तं नमंसन्ति जस्स धम्मं सया मणो !' महावीर ने ईश्वर की परिकल्पना नहीं की; देवताओं के आगे झुकने की बात नहीं की अपितु मानवीय महिमा का जोरदार समर्थन करते हुए कहा कि जिस साधक का मन धर्म में रमण करता है उसे देवता भी नमस्कार करते हैं। व्यक्ति अपनी ही जीवन-साधना के द्वारा इतना उच्चस्तरीय विकास कर सकता है कि आत्मा ही परमात्मा बन सकती है।

जैन तीर्थंकरों का इतिहास एवं उनका जीवन आकाश से पृथ्वी पर उतरने का क्रम नहीं है अपितु, पृथ्वी से ही आकाश की ओर जाने का उपक्रम है। नारायण का नर शरीर धारण करना नहीं है अपितु नर का ही नारायण बनना है। वे अवतारवादी परम्परा के पोषक नहीं अपितु उत्तारवादा परम्परा के तीर्थंकर थे। उन्होंने अपने जीवन की साधना के द्वारा, प्रत्येक व्यक्ति को यह प्रमाण दिया; उसे यह विश्वास दिलाया कि यदि वह साधना कर सके, राग-द्वेष को छोड़ सके तो कोई ऐसा कारण नहीं है कि वह प्रगति न कर सके। जब प्रत्येक व्यक्ति प्रगति कर सकता है, अपने ज्ञान और साधना के बल पर उच्चतम विकास कर सकता है और तत्त्वतः कोई किसी की प्रगति में न तो बाधक है और न साधक तो फिर संघर्ष का प्रश्न ही कहाँ उठता है ? इस तरह उन्होंने एक सामाजिक दर्शन दिया।

प्रत्येक जीव में आत्मशक्ति—सामाजिक समता एवं एकता की दृष्टि से श्रमण परम्परा का अप्रतिम महत्व है। इस परम्परा में मानव को मानव के रूप में देखा गया है; वर्णों, सम्प्रदायों, जाति, उपजाति, वादों का लेबिल चिपकाकर मानव मानव को बाँटने वाले दर्शन के रूप में नहीं। मानव-महिमा का जितना जोरदार समर्थन जैनदर्शन में हुआ है वह अप्रतिम है। भगवान् महावीर ने आत्मा की स्वतन्त्रता की प्रजातन्त्रात्मक उद्घोषणा की। उन्होंने कहा कि समस्त आत्माएँ स्वतन्त्र हैं। विवक्षित किसी एक द्रव्य तथा उसके गुणों एवं पर्यायों का अन्य द्रव्य या उसके गुणों और पर्यायों के साथ किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध नहीं है।

इसके साथ-साथ उन्होंने यह बात कही कि स्वरूप की दृष्टि से समस्त आत्माएँ समान हैं। अस्तित्व की दृष्टि से समस्त आत्माएँ स्वतन्त्र हैं; भिन्न-भिन्न हैं, किन्तु स्वरूप की दृष्टि से समस्त आत्माएँ समान हैं। मनुष्य मात्र में आत्म-शक्ति है। शारीरिक एवं मानसिक विषमताओं का कारण कर्मों का भेद है। 'जीव' अपने ही कारण से संसारी बना है और अपने ही कारण से मुक्त होगा। व्यवहार से बन्ध और मोक्ष के हेतु अन्य पदार्थ को जानना चाहिए किन्तु निश्चय से यह जीव स्वयं मोक्ष का हेतु है। आत्मा अपने स्वयं के उपार्जित कर्मों से ही बँधती है। आत्मा का दुःख स्वकृत है। प्रत्येक व्यक्ति ही प्रयास से उच्चतम विकास कर सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैनदर्शन में आत्माएँ अनन्तानन्त हैं तथा परिणामी स्वरूप हैं किन्तु चेतना स्वरूप होने के कारण एक जीवात्मा अपने रूप में रहते हुए भी ज्ञान के अनन्त पर्यायों का ग्रहण कर सकती हैं।

स्वरूप की दृष्टि से सभी आत्माएँ समान हैं। जीव के सहज गुण अपने मूल रूप में स्थित रहते हैं। पुरुषार्थ के परिणामस्वरूप शुद्धि-अशुद्धि की मात्रा घटती-बढ़ती रहती है।

आत्म-तुल्यता तथा सामाजिक समता—भगवान् ने समस्त जीवों पर मैत्रीभाव रखने एवं समस्त संसार को समभाव में देखने का निर्देश दिया। 'श्रमण' की व्याख्या करते हुए उसकी सार्थकता समस्त प्राणियों के प्रति समदृष्टि रखने में बतलायी। समभाव की साधना व्यक्ति को श्रमण बनाती है।

भगवान् ने कहा कि जाति की कोई विशेषता नहीं, जाति और कुल से त्राण नहीं होता। प्राणी मात्र आत्मतुल्य है। से इस कारण प्राणियों के प्रति आत्मतुल्य भाव रखो; आत्मतुल्य समझो, सबके प्रति मैत्रीभाव रखो, समस्त संसार को समभाव से देखो। समभाव के महत्व का प्रतिपादन उन्होंने यह कहकर किया कि आर्य महापुरुषों ने इसे ही धर्म कहा है।

अहिंसा : जीवन का विधानात्मक मूल्य एवं भाव दृष्टि—भगवान् महावीर ने अहिंसा शब्द का व्यापक अर्थ में प्रयोग किया— मन, वचन, कर्म से किसी को पीड़ा न देना। यहाँ आकर अहिंसा जीवन का विधानात्मक मूल्य बन गया।

महावीर ने अहिंसा के प्रतिपादन द्वारा व्यक्ति के चित्त को बहुत गहरे से प्रभावित किया। उन्होंने संसार में प्राणियों के प्रति आत्मतुल्यता-भाव की जागृति का उपदेश दिया, शत्रु एवं मित्र सभी प्राणियों पर समभाव की दृष्टि रखने का शंखनाद किया।

जब व्यक्ति सभी जीवों को समभाव से देखता है तो राग-द्वेष का विनाश हो जाता है। उसका चित्त धार्मिक बनता है। रागद्वेष-हीनता धार्मिक बनने की प्रथम सीढ़ी है।

समभाव एवं आत्मतुल्यता की दृष्टि का विकास होने पर व्यक्ति अहिंसक अपने आप हो जाता है। इसका कारण यह है कि प्राणी मात्र जीवित रहने की कामना करने वाले हैं। सबको अपना जीवन प्रिय है। सभी जीव जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता। जब सभी प्राणियों को दुःख अप्रिय है तो किसी भी प्राणी को दुःख न पहुँचाना ही अहिंसा है। अहिंसा केवल निवृत्तिपरक साधना नहीं है, यह व्यक्ति को सही रूप में सामाजिक बनाने का अमोघ मन्त्र है।

अहिंसा के साथ व्यक्ति की मानसिकता का सम्बन्ध है। इस कारण महावीर ने कहा कि अप्रमत्त आत्मा अहिंसक है। एक कृषक अपनी क्रिया करते हुए यदि अनजाने जीवहिंसा कर भी देता है तो भी हिंसा की भावना उसके साथ जुड़ती नहीं है। भले ही हम किसी का वध न करें, किन्तु किसी के वध करने के विचार का सम्बन्ध मानसिकता से सम्पृक्त हो जाता है।

इसी कारण कहा गया है कि रागद्वेष का अप्रादुर्भाव अहिंसा एवं उसका प्रादुर्भाव हिंसा है।

हिंसा से पाशविकता का जन्म होता है, अहिंसा से मानवीयता एवं सामाजिकता का। दूसरों का अनिष्ट करने की नहीं, अपने कल्याण के साथ-साथ दूसरों का भी कल्याण करने की प्रवृत्ति ने मनुष्य को सामाजिक एवं मानवीय बनाया है। प्रकृति से वह आदमी है, नैतिकता-बोध के संस्कारों ने उसमें मानवीय भावना का विकास कर उसके जीवन को सार्थकता प्रदान की है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहिंसा से अनुप्राणित अर्थ तन्त्र : अपरिग्रह—अहिंसा के साथ ही जुड़ी हुई भावनाएँ हैं—अपरिग्रहवाद एवं अनेकांतवाद। परिग्रह से आसक्ति एव ममता का जन्म होता है। अपरिग्रह वस्तुओं के प्रति ममत्वहीनता का नाम है। जब व्यक्ति अहिंसक होता है, रागद्वेष रहित होता है तो स्वयमेव अपरिग्रहवादी हो जाता है। उसकी जीवन-दृष्टि बदल जाती है। भौतिक-पदार्थों के प्रति आसक्ति समाप्त हो जाती है। अहिंसा की भावना से प्रेरित व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं को उसी सीमा तक बढ़ाता है, जिससे किसी अन्य प्राणी के हितों को आघात न पहुँचे।

बहुत अधिक उत्पादन मात्र करने से ही हमारी सामाजिक समस्याएँ नहीं सुलझ सकतीं। हमें व्यक्ति के चित्त को अन्दर से बदलना होगा। उसकी कामनाओं, इच्छाओं को सीमित करना होगा तभी हमारी बहुत सारी सामाजिक समस्याओं को सुलझाया जा सकेगा।

ऐसा नहीं हो सकता कि कोई सामाजिक प्राणी सम्पूर्ण पदार्थों को छोड़ दें। किन्तु हम अपने जीवन को इस प्रकार से ढाल सकते हैं कि पदार्थ हमारे पास रहें किन्तु उनके प्रति हमारी आसक्ति न हो, उनके प्रति हमारा ममत्व न हो।

समाज में इच्छाओं को संयमित करने की भावना का विकास आवश्यक है। इसके बिना मनुष्य को शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती। 'परकल्याण' की चेतना व्यक्ति की इच्छाओं को लगाम लगाती है तथा उसमें त्याग करने की प्रवृत्ति एवं अपरिग्रही भावना का विकास करती है।

परिग्रह की वृत्ति मनुष्य को अनुदार बनाती है, उसकी मानवीयता को नष्ट करती है। उसकी लालसा बढ़ती जाती है। धनलिप्सा एवं अर्थलोलुपता ही उसका जीवन-लक्ष्य हो जाता है। उसकी जिन्दगी पाशविक शोषणता के रास्ते पर बढ़ना आरम्भ कर देती है। इसके दुष्परिणामों को भगवान् महावीर ने पहचाना था। इसी कारण उन्होंने कहा कि जीव परिग्रह के निमित्त हिंसा करता है, असत्य बोलता है, चोरी करता है, मैथुन का सेवन करता है और अत्यधिक मूर्च्छा करता है। परिग्रह को घटाने से ही हिंसा, असत्य, अस्तेय एवं कुशील इन चारों पर रोक लगाती है।

परिग्रह के परिमाण के लिए 'संयम' की साधना आवश्यक है। 'संयम' पारलौकिक आनन्द के लिए ही नहीं, इस लोक के जीवन को सुखी बनाने के लिए भी आवश्यक है। आधुनिक युग में पाश्चात्य जगत के विचारकों ने स्वच्छंद यौनाचार एवं निर्बाध इच्छा-तृप्ति की प्रवृत्ति को सहज मान लिया। इस कारण पाश्चात्य जगत के व्यक्ति एवं समाज ने 'व्यक्ति की स्वतन्त्रता तथा अचेतन मन की संतुष्टि' आदि सिद्धान्तों के नाम पर जिस प्रकार का संयमहीन आचरण किया उसका परिणाम क्या निकला है? जीवन की लक्ष्यहीन, सिद्धान्तहीन, मूल्यविहीन स्थिति एवं निर्बाध भोगों में निरत समाज की स्थिति क्या है? उनके पास पैसा है, धन-दौलत है, साधन हैं किन्तु फिर भी जीवन में संत्रास, अविश्वास, अतृप्ति, वितृष्णा एवं कुंठाएँ हैं। हिप्पी सम्प्रदाय क्या इसी प्रकार की सामाजिक स्थितियों का परिणाम नहीं है।

वैचारिक अहिंसा : अनेकान्तवाद—अहिंसक व्यक्ति आग्रही नहीं होता। उसका प्रयत्न होता है कि वह दूसरों की भावनाओं को ठेस न पहुँचावे। वह सत्य की तो खोज करता है, किन्तु उसकी कथन-शैली में अनाग्रह एवं प्रेम होता है। अनेकान्तवाद व्यक्ति के अहंकार को झकझोरता है। उसकी आत्यन्तिक-दृष्टि के सामने प्रश्नवाचक चिह्न लगाता है। अनेकान्तवाद यह स्थापना करता है कि प्रत्येक पदार्थ में विविध गुण एवं धर्म होते हैं। सत्य का सम्पूर्ण साक्षात्कार सामान्य व्यक्ति द्वारा एकदम सम्भव नहीं हो पाता। अपनी सीमित दृष्टि से देखने पर हमें वस्तु के एकांगी गुण-धर्म का ज्ञान

साध्वीरत्न कुसुमवती अभिनन्दन ग्रन्थ
Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होता है। विभिन्न कोणों से देखने पर एक ही वस्तु हमें भिन्न प्रकार की लग सकती है तथा एक स्थान से देखने पर भी विभिन्न दृष्टियों की प्रतीतियाँ भिन्न हो सकती हैं।

१६ फरवरी, १९८० को सूर्यग्रहण के अवसर पर काल के एक ही क्षण भारतवर्ष के विभिन्न स्थानों पर व्यक्तियों को सूर्यग्रहण के समान दृश्य की प्रतीति नहीं हुई। कारवार, रायचूर एवं पुरी आदि स्थानों में जिस क्षण पूर्ण ग्रहण हुआ जिसके कारण पूर्ण अँधेरा छा गया; वहीं बम्बई में सूर्य का ८५ प्रतिशत भाग, दिल्ली में ५८ प्रतिशत भाग तथा श्रीनगर में ४८ प्रतिशत भाग दिखाई नहीं दिया।

भारतवर्ष मे ही सूर्यग्रहण आरम्भ एवं समाप्ति के समय में भी अन्तर रहा। कारवार में सूर्यग्रहण मध्याह्न २·१७·२० बजे आरम्भ हुआ तो भुवनेश्वर में २·४२·१५ पर तथा कारवार में ४·५२·१० पर समाप्त हुआ तो भुवनेश्वर में ४·५९·३५ पर। पूर्ण सूर्यग्रहण की अवधि रायचूर में २ मिनट ४१ सेकंड रही तो भुवनेश्वर में यह अवधि केवल ४६ सेकंड की ही रही।

'स्याद्वाद' अनेकांतवाद का समर्थक उपादान है; तत्वों को व्यक्त कर सकने की प्रणाली है; सत्य कथन की वैज्ञानिक पद्धति है।

मिथ्या ज्ञान के वचनों को दूर करके स्याद्वाद ने ऐतिहासिक भूमिका का निर्वाह किया, एकांतिक चिन्तन की सीमा बतलाई। आग्रहों के दायरे में सिमटे हुए मानव की अंधेरी कोठरी को अनेकांतवाद के अनन्त लक्षणसम्पन्न सत्य-प्रकाश से आलोकित किया जा सकता है। आग्रह एवं असहिष्णुता के बन्द दरवाजों को स्याद्वाद के द्वारा खोलकर, अहिंसावादी रूप में विविध दृष्टियों एवं सन्दर्भों से उन्मुक्त विचार करने की प्रेरणा प्रदान की जा सकती है।

यदि हम प्रजातन्त्रात्मक युग में वैज्ञानिक पद्धति से सत्य का साक्षात्कार करना चाहते हैं तो 'अनेकांत' से दृष्टि लेकर 'स्याद्वाद प्रणाली' द्वारा कर सकते हैं। चिन्तन के धरातलों पर उन्मुक्तता तथा अनाग्रह तथा संवेदना के धरातल पर प्रेम एवं सहिष्णुता की भावना का विकास कर सकते हैं।

इस प्रकार विश्व-धर्म के रूप में जैन धर्म एवं दर्शन की आधुनिक युग में प्रासंगिकता को व्याख्यायित करने की महती आवश्यकता है। यह मनुष्य एवं समाज दोनों की समस्याओं का अहिंसात्मक समाधान प्रस्तुत करता है। यह दर्शन आज की प्रजातन्त्रात्मक शासन-व्यवस्था एवं वैज्ञानिक सापेक्षवादी चिन्तन के भी अनुरूप है। आदमी के भीतर की अशांति, उद्वेग एवं मानसिक तनावों को यदि दूर करना है तथा अन्ततः मानव के अस्तित्व को बनाये रखना है तो जैन दर्शन एवं धर्म में प्रतिपादित मानव की प्रतिष्ठा, प्रत्येक आत्मा की स्वतन्त्रता तथा प्रत्येक जीव में आत्म-शक्ति का अस्तित्व आदि स्थापनाओं एवं प्रत्ययों को विश्व के सामने रखना होगा। जैन धर्म एवं दर्शन मानव-मात्र के लिए समान मानवीय मूल्यों की स्थापना करता है। सापेक्षवादी सामाजिक संरचनात्मक व्यवस्था का चिन्तन प्रस्तुत करता है। पूर्वाग्रह रहित उदार दृष्टि से एक दूसरे को समझाने और स्वयं को तलाशने—जानने के लिये अनेकांतवादी जीवन-दृष्टि प्रदान करता है। समाज के प्रत्येक सदस्य के लिए समान अधिकार की घोषणा करता प्रत्येक व्यक्ति को 'स्व-प्रयत्न' से विकास करने का मार्ग दिखाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org